आर्य विवाह् विधिमान्यकरण अधिनियम, 1937[1]

(1937 का अधिनियम संख्यांक 19)

[14 अप्रैल, 1937]

आर्य समाजियों में प्रचलित अन्तर्विवाहों को मान्यता देने तथा उनकी विधिमान्यता के बारे में शंकाओं का निराकरण करने के लिए अधिनियम

आर्य समाजियों के नाम से ज्ञात, हिन्दुओं के एक वर्ग के अन्तर्विवाहों को मान्यता देना तथा उनकी विधिमान्यता को शंकाओं के परे रखना समचीन है;

अतः एतद्द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियमित किया जाता हैः—

1. संक्षिप्त नाम और विस्तार—(1) इस अधिनियम का संक्षिप्त नाम आर्य विवाह् विधिमान्यकरण अधिनियम, 1937 है ।

[2][(2) इसका विस्तार [3][उन राज्यक्षेत्रों के सिवाय, सम्पूर्ण भारत पर है जो 1 नवम्बर, 1956 के ठीक पूर्व भाग 'ख' राज्यों में समाविष्ट थे] और यह भारत के नागरिकों को भी, जहां कहीं भी वे हों लागू होता है ।]

2. आर्य समाजियों के बीच हुए विवाह का अविधिमान्य न होना—हिन्दू विधि के किसी उपबंध, प्रथा या रूढ़ि के प्रतिकूल होते हुए भी, जो विवाह के समय आर्य समाजी है ऐसे दो व्यक्तियों के बीच हुआ कोई विवाह, चाहे वह इस अधिनियम के प्रारम्भ के पूर्व या पश्चात् किया गया हो केवल इस तथ्य के कारण अविधिमान्य नहीं होगा या कभी भी अविधिमान्य हुआ नहीं समझा जाएगा कि विवाह के पक्षकार किसी समय हिन्दुओं की विभिन्न जातियों या विभिन्न उपजातियों के थे या पक्षकारों में से एक या दोनों विवाह के पूर्व किसी समय हिन्दू धर्म से भिन्न किसी धर्म के थे ।

———

[1] यह अधिनियम 1963 के विनियम सं० 6 की धारा 2 और अनुसूची 1 द्वारा (1-7-1965 से) दादरा और नागर हवेली पर विस्तारित किया गया ।
[2] विधि अनुकूलन आदेश, 1950 द्वारा पूर्ववर्ती उपधारा (2) के स्थान पर प्रतिस्थापित ।
[3] विधि अनुकूलन (सं० 3) आदेश, 1956 द्वारा "भाग ख राज्यों" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।